कहानी

शुरुआत

महेन्द्र तिवारी

मैं वह स्त्री थी जो शीशे में अपनी परछाई नहीं, बल्कि सदियों पुराने संस्कारों की मुहर देखती थी. मेरे लिए, एक पत्नी का अस्तित्व उस अदृश्य लक्ष्मण रेखा से परिभाषित होता था, जिसे लज्जा% और मर्यादा नाम दिया गया था. हमारे विवाह को दो वर्ष हो चुके थे, पर मेरी आत्मा पर अभी भी सदियों पुराने संस्कारों का पहरा था.

मेरा ससुराल में भी यही सिखाया गया था कि एक पत्नी को अपने धर्म की सीमाओं में रहकर हर रिश्ते को निभाना चाहिए –चुपचाप और समर्पित. पर इन सब मान्यताओं के बीच दीपक एक अपवाद थे .उनके लिए मैं कोई जिम्मेदारी, कोई धर्म निभाने वाली बहू नहीं, बल्कि उनकी संपूर्ण जीवन–संगिनी थी. उन्होंने मुझे सिर्फ अपनाया नहीं, समझा भी. उनके साथ रहते हुए मैंने जाना कि प्रेम का मतलब केवल साथ जीना नहीं, बल्कि हर परिस्थिति में एक–दूसरे की ढाल बनकर खड़ा रहना है.

हमारी शादीशुदा ज़िन्दिगी किसी मधुर संगीत की तरह, सामंजस्य और विश्वास से भरी हुई थी. दीपक सुबह की पहली चाय से लेकर रात के आखिरी संवाद तक, मेरे हर पल का हिस्सा थे. वह मेरे चेहरे की थकान को शब्दों से नहीं, अपने सहज स्पर्श से मिटा देते. हफ्ते में एक दिन वह मेरे लिए विशेष पकवान बनाते, कहते, प्यार में मेहनत की खुशबू होनी चाहिए, रीना. धीरे–धीरे हम एक–दूसरे के इतने अभ्यस्त हो गए कि एक की चुप्पी भी दूसरे के दिल में गूंज उठती, और एक का अधूरापन दूसरे के बिना पूर्ण नहीं होता. यह प्रेम सिर्फ दो शरीरों का नहीं, बल्कि दो आत्माओं का गहरा मिलन था.

कुछ महीनो बाद मुझे पता चला कि मैं माँ बनने वाली हूँ. दीपक की खुशी जैसे सातों आसमान पार कर गई, उनके चेहरे पर एक ऐसी अलौकिक चमक थी जो मैंने पहले कभी नहीं देखी थी. उन्होंने उस दिन मेरे हाथ को अपने हाथ में कसकर थाम लिया और कहा, अब हमारी जिंदगी में एक नया, सुनहरा सूरज उगेगा. परिवार का हर सदस्य मेरे चारों ओर स्नेह का घेरा बना चुका था. दीपक तो हर वक्त बस मेरे पास रहना चाहते, मेरी हर छोटी ज़रूरत, हर ख्वाहिश को पूरा करने में उन्हें एक परम आनंद मिलता. वह हर रात मेरे पेट पर हाथ फेरकर, आने वाले शिशु से बातें करते, अपनी आवाज़ में उसे दुनिया के सारे प्यार का आश्वासन देते. लेकिन किसे पता था कि उसी अथाह खुशी के बीच, भाग्य एक निर्दयी और क्रूर मोड़ लेने वाला है. एक दिन हम डॉक्टर के पास नियमित जांच के लिए गए थे. रिपोर्ट बिल्कुल सामान्य थी, हमारे चेहरे पर भविष्य के सुनहरे सपनों की चमक थी. लेकिन घर लौटते समय जिस ई–रिक्शा ने हमें टक्कर मारी, उसने उन सपनों को पलभर में बिखेर दिया.

मैं सड़क पर पेट के बल गिरी थी, मेरे कानों में दीपक की दर्दभरी आवाज़ गूंज रही थी, रीना, आँखें खोलो! आँखें खोलो रीना दर्द असहनीय था, मेरी नस–नस चीख उठी थी. लोग इकट्ठे हो गए, कोई एम्बुलेंस बुला रहा था .सब कुछ धुंधला होता चला गया, और फिर केवल घना अंधेरा शेष रहा.

जब आँख खुली, अस्पताल की सफेद, नीरव दीवारें मेरे चारों ओर थीं. दीपक पास ही बैठे थे, उनकी आँखों में थकान थी, पर उससे कहीं अधिक गहरी एक अथाह बेचैनी और अपराध–बोध था. मैंने बोलने की कोशिश की, पर कुछ अनकहे, भारी शब्दों ने मेरा गला रोक लिया. डॉक्टरों ने आकर बताया कि मेरी रीढ़ की हड्डी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई है. शायद पैरों का पूरा सहारा फिर कभी न मिल पाए, शायद चलने–फिरने के लिए मुझे एक बाहरी सहारे की आवश्यकता होगी, शायद एक व्हीलचेयर की.

तीन दिन बाद दीपक ने एक और खबर दी, हमारा बच्चा अब नहीं रहा. उस क्षण मेरी दुनिया केवल टूटी नहीं, बल्कि पूरी तरह बिखर गई. दीपक ने बस मेरा सिर अपने सीने से लगा लिया. वह कुछ नहीं बोले, उनका मौन ही सबसे बड़ा, सबसे मजबूत सहारा था. उस मौन में उन्होंने मुझे अपनी सारी हिम्मत, सारा दर्द और सारा प्रेम सौंप दिया था. घर लौटने पर मेरी ज़िन्दिगी पूरी तरह से बदल गई थी. अब मेरा दिन व्हीलचेयर, कड़वी दवाइयों और शरीर को तोड़ देने वाली थकान के बीच सिमटने लगा था.दीपक हर सुबह मेरे कॉलेज के पुराने नोट्स पढ़कर सुनाते, ताकि मेरा मन उन दुखद विचारों से हटकर कहीं और बहले.

एक शाम जब वह मुझे बहुत प्यार से खाना खिला रहे थे, अचानक मेरे शरीर पर मेरा नियंत्रण पूरी तरह से खो गया और व्हील चेयर पर ही पेशाब निकल गया. शर्म, ग्लानि और आत्म–घृणा के आँसू मेरे चेहरे पर बह निकले. पर दीपक ने पल भर की भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई. उन्होंने बिना कुछ कहे, बड़ी सहजता से मुझे साफ किया, कपड़े बदले और सिर्फ इतना कहा,तुम्हें तकलीफ हो रही होगी न, रीना? क्या दर्द ज्यादा है? वह क्षण मेरे आत्मगौरव की सबसे बड़ी, सबसे कठिन परीक्षा थी, लेकिन दीपक ने इसे प्रेम की पराकाष्ठा बना दिया. उन्होंने मुझे एहसास कराया कि मेरे शरीर की यह अपूर्णता उन्हें मुझसे दूर नहीं कर सकती.

मैंने अगली सुबह अपनी सास से कहा कि किसी नर्स को रख लेते हैं, मुझे दीपक से यह सब करवाते हुए बहुत ग्लानि महसूस होती है. उनका चेहरा कठोर हो गया. उन्होंने कहा, मुझे शर्म आती है, रीना, जो तुम अपने पति से ये सब करवाती हो.

शाम को जब दीपक आए, मैंने उनसे टूटी हुई आवाज़ में कहा, दीपक, मुझे यह सब तुमसे करवाना ठीक नहीं लगता. माँ जी भी यही कह रही थीं. उन्होंने शांत, गहरी आँखों से मेरी ओर देखा और बोले, अगर मेरी जगह तुम होतीं तो क्या मुझे दूर कर देतीं? क्या तुम मुझे किसी नर्स के हवाले कर देतीं? मैंने कोई जवाब नहीं दिया, क्योंकि मैं जानती थी कि मैं ऐसा कभी नहीं कर पाती. रीना, उन्होंने मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा, शर्म तब होती है जब हम पराये हों. मैंने तुम्हें अपनी पत्नी, अपनी जीवन–संगिनी के हर रूप में अपनाया है, अब तुम्हारा यह दर्द मेरा हिस्सा है, मेरे जीवन का सत्य है. अगर तुम्हें लगता है कि मैं इन छोटी–छोटी ज़रूरतों को पूरा करते हुए कमज़ोर हो जाऊँगा, तो समझ लेना हमारा रिश्ता बस नाम का रह गया है.

उनके ये शब्द एक दिव्य सत्य की तरह मेरे भीतर गूंजते रहे. उसी रात पहली बार मुझे एहसास हुआ कि असली प्रेम दया या सहानुभूति नहीं होता, बल्कि समानता, आत्मा का जुड़ाव और एक–दूसरे की अपूर्णताओं को स्वीकार करने का साहस होता है.

दिन बीतते रहे. दीपक ने हार नहीं मानी. उन्होंने मेरी फिजियोथेरेपी शुरू करवाई. वह हर सुबह, बिना किसी नागा के मेरे साथ अभ्यास करते. कभी मेरी उंगलियों को पकड़कर कहते, चलो, मेरी रानी, आज एक इंच और. पहले मैं अभ्यास के दौरान सिर्फ मुस्कुराती, फिर धीरे–धीरे वह बेबस मुस्कान एक दृढ़ संकल्प में बदलने लगी. मुझे लगने लगा कि मैं फिर से चल पाऊँगी.

डॉक्टरों ने उम्मीदें कम बताईं. मगर दीपक ने हार नहीं मानी. उन्होंने अपने ऑफिस का समय घटाया, अपनी कई मीटिंग्स को रद्द किया और मेरी दवाइयों से लेकर एक्सरसाइज तक सब पर ध्यान दिया.

एक दिन उन्होंने मुझे ज़ोर देकर बाहर पार्क में व्हीलचेयर से उठकर, वॉकर के सहारे चलने को कहा. मैं डर गई,दीपक, अगर गिर गई तो? मैं नहीं चाहती कि तुम फिर से दुखी हो. उन्होंने गहरी, आश्वस्त करने वाली मुस्कान के साथ कहा,मैं पकड़ लूँगा, रीना, जैसे उस दिन नहीं पकड़ पाया था. वह पहली बार थाजब उन्होंने उस भयानक हादसे का ज़िक्र किया. उनकी आवाज़ में दर्द था, पर उसके भीतर एक अटूट दृढ़ता की जड़ें थीं. मैंने हिम्मत जुटाई और धीरे से वॉकर को थाम लिया. मैंने जैसे ही अपना पहला कदम जमीन पर रखा, मेरे पैरों में एक हल्कीसी, लेकिन स्पष्ट हलचल महसूस हुई. मैं चिल्ला पड़ी, मेरी आँखों में खुशी के आँसू भर आए, दीपक, मुझे लगता है कुछ हिल रहा है! उन्होंने मुझे अपनी बाहों में कस लिया और कहा,तब तो सुबह का सूरज हमारे लिए फिर से उग आया, रीना.

अब उस घटना को पूरे दो साल और बीत चुके हैं. मैं अभी भी पूरी तरह से ठीकनहीं हुई हूँ, लेकिन वॉकर के सहारे अपने पैरों पर खड़ी होने का सपना अब असंभवन नहीं लगता. मैं अब समझ चुकी हूँ कि शरीर का चलना–फिरना जीवन नहीं होता; जीवन तो वह है जो आत्मा के भीतर एक शाश्वत लौ की तरह जलता रहे. दीपक ने प्रेम और विश्वास का वह दीपक मेरे भीतर जला दिया है जो किसी भी तूफान से नहीं बुझ सकता.

आज जब आईने में खुद को देखती हूँ तो मुझे वह लज्जा और मर्यादा की बेड़ियों में बंधी रीना नहीं दिखती जो हादसे से पहले थी. अब मैं वह स्त्री हूँ जिसने अपने पति के निस्वार्थ प्रेम में आत्मबल और नई पहचान पाई है. मैं अक्सर दीपक से कहती हूँ,तुमने मुझे फिर से जीवन दिया. वह हमेशा मुस्कुराकर जवाब देते,नहीं रीना, मैंने सिर्फ तुम्हारा हाथ थामने का साहस किया था, चलना तो तुमने खुद सीखा है. और हाँ, अगर हम सच्चे जीवनसाथी हैं, तो हमें एक–दूसरे को सहारे के लिए धन्यवाद नहीं देना चाहिए.

उनका यह जवाब मुझे बार–बार एहसास कराता है कि हमारी यात्रा अभी खत्म नहीं हुई है, बल्कि प्रेम के एक नए अध्याय की बस शुरुआत हुई है, जहाँ हम दोनों एक–दूसरे के लिए प्रेम और आत्म–सम्मान की नींव हैं.

क्लास by बड़े भाई

इस तरह हो स्वयं पर विश्वास

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई , महाभारत से एक चर्चित किस्सा सुनाता हूँ. कुरुक्षेत्र में युद्ध छिड़ने वाला था. दोनों पक्ष पांडव और कौरव, अपने पडोसी राजाओं ,रिश्तेदारों से युद्ध में मदद के लिए संपर्क कर रहे थे. इसी क्रम में योगेश्वर श्रीकृष्ण से मदद के लिए दुर्योधन और अर्जुन पहुँचते हैं. अब इस तरह मदद के लिए कोई आए तो किसी की मदद किये बिना कैसे भेजते. इसके लिए भगवान् ने एक उपाय निकाला. भगवान् ने कहा मेरे पास आप दोनों के मदद के लिए दो विकल्प हैं. इसमें जो चुनना हो आप चुन लें. पहला यह कि आप में से कोई चाहें तो उन्हें हमारी अक्शुह्नी सेना मिल जाएगी और दूसरा में यानि आप में से जो चाहें वो मुझे चुन लें लेकिन यह भी ध्यान रहे मैं निहत्था रहूँगा, मैं लडूंगा नही. अर्जुन को पहले चुनने के लिए कहा गया और कहते हैं कि अर्जुन ने बिना समय गँवाए कृष्ण को चुन लिया. दुर्योधन खुश हो गया क्योंकि अकेले निहत्थे , जो यद्ध नही करेंगे उनको चुनने से क्या फायदा होता. अर्जुन को बेवकूफ समझकर दुर्योधन, सेना स्वीकार करके प्रसन्न होकर चला गया. दुर्योधन के जाने के बाद श्री कृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि तुम्हारे पास इतनी बड़ी सेना चुनने का अवसर था, फिर तुमने मुझे क्यों चुना ? मैं तो निहत्था और अकेला रहूंगा. युद्ध में तुम्हारी क्या मदद कर सकूंगा. तब अर्जुन ने कहा - मुझे यह सब नही पता केशव लेकिन यह अटल विश्वास है कि आपके रहते मेरा अहित नही हो सकता.

भगवान् कृष्ण, अर्जुन का यह विश्वास देखकर मुस्कुरा दिए. इसी विश्वास ने पांच पांडवों को महाभारत में विजय दिलवायी.

छोटे भाई, आप समझ गये होंगे. बड़ा हासिल करने के लिए इसी तरह अपने आप पर विश्वास होना चाहिए जैसा अर्जुन ने कन्हैया पर दिखाया था. कोई कितना भी कुछ कहे आपका अपनी क्षमताओं से विश्वास नही डिगना चाहिए. इससे आप अपने जीवन में जो भी ठानेंगे, सब हासिल कर लेंगे. दुनिया का कोई भी काम आपके लिए असंभव नही होगा. धन्यवाद

पुस्तक चर्चा

'पथ के पन्ने' : यात्राओं के पथ की आत्मीय स्मृतियां

प्रकाश कान्त

आम तौर पर लेखिकाओं ने यात्रा वर्णन या यात्रा संस्मरण कम ही लिखे हैं. इस लेखन में लेखिकाओं की उपस्थिति कम रही. संभवत: इस कारण भी कि लम्बे समय तक पुरुषों की तरह स्त्रियों को बड़ी यात्राएँ करने के कम अवसर उपलब्ध रहे. ख़ासकर राहुल सांस्कृत्यायन की तिब्बत जैसे क्षेत्र की एकाकी यात्राओं जैसे ! प्राचीन काल में हुए मेगस्थनीज़, ह्वेनसांग, फाह्यान इत्यादि जैसे पुरुष यात्रियों की तरह किसी महिला यात्री का नाम अमूमन नहीं या कम सुना गया. कुछ कवयित्रियों ने छोटी–मोटी यात्रा की भी तो उसे शब्दबद्ध नहीं किया. वह युग कमोबेश गद्य का उतना नहीं जितना पद्य का रहा. आज जिस तरह के यात्रा–वर्णन या संस्मरण बड़ी संख्या में पढ़ने को मिलते हैं वे मोटे तौर पर नवीन विधा हैं.

यात्रा वर्णनों के साथ आमतौर पर दो स्थितियाँ होती हैं. या तो वे रिपोर्टिंग बन जाते हैं या फ़िर एक रचना! वस्तुनिष्ठता की परम शुद्धता उन्हें रिपोर्टिंग बना देती है जबकि संवेदनात्मकता दृष्टि एक साहित्यिक रचना! दोनों के बीच एक महीन सीमा–रेखा होती है. दोनों की अपनी–अपनी ज़रूरतें होती हैं! दोनों किसी स्थान या वस्तु विशेष को अपने तरीक़े से सामने रखती हैं. बेशक बेहतर रिपोर्टिंग भी मानसिक ज़रूरतें पूरा करती है. यशोधरा जी की यह पुस्तक रिपोर्टिंग का नहीं, संवेदनात्मक रचनाओं का संग्रह है. मध्यप्रदेश और बाहर के कुछ स्थानों का रचनात्मक भ्रमण है. यूँ, उनके बारे में आज प्रचलित अन्य माध्यमों से तो जाना हुआ हो सकता है लेकिन यशोधरा जी की एक गहरी संवेदनात्मकता दृष्टि से उन्हें फ़िर से परिचित करवाती है.

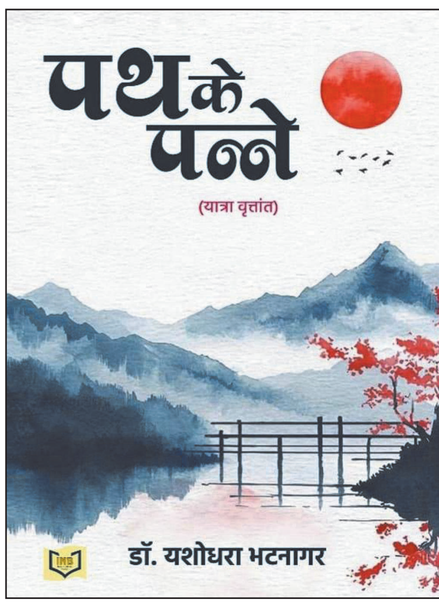

संग्रह में अलग–अलग समयों पर की गयीं यात्राओं का वर्णन है. आत्मीय वर्णन! ऐसे वर्णनों में कभी–कभी जिस प्रकार का रूखापन दिखने लगता है उससे बचते हुए ! जगहों को पहली बार देखने–महसूस करने का जो बौद्धिक आनन्द, सुख एवं विस्मय हो सकता है, वह इनमें है. ये यात्राएँ मध्यप्रदेश और बाहर के प्रदेशों की हैं और सामान्यत: परिवार या साहित्यिक समूह के साथ की गयी हैं. एकल यात्राएँ नहीं हैं. इधर कुछ स्त्री यात्रियों की अकेली की गयी यात्राओं के ट्रैवल ब्लॉग भी सामने आये हैं! जिनमें एक ख़ास तरह के एडवेंचर का एहसास भी है. ये यात्राएँ प्राकृतिक, ऐतिहासिक इत्यादि जैसे स्थानों की की गयीं सीधी–सादी यात्राएँ हैं. ये शोध यात्राएँ भी नहीं हैं. सभी यात्राएँ होती भी नहीं! हालाँकि, शोध यात्राओं का इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है. वे इतिहास जानने के स्रोत भी रही हैं.

इस संग्रह की यात्राएँ, जैसा कि पहले कहा, प्रमुखत: पर्यटन और ऐतिहासिक स्थलों की रही हैं. उनके पीछे की दृष्टि उन स्थलों को महसूस करने उनसे एक प्रकार का मौन संवाद करने की रही है. संग्रह के लेख वहाँ हुए अनुभवों एवं उन स्थलों से किये गये मौन संवादों को साँझा करने का प्रयास भी! चाहे फ़िर इतिहास के खण्डहर रहे हों या लोकांचल या फिर भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान! उन जगहों के जन जीवन, अतीत, संस्कृति, संवेदना इत्यादि को देखकर हुए अनुभवों को दर्ज किया है. जैसा कि पुस्तक के प्रारंभ में उन्होंने स्वयं कहा है, 'ये यात्राएँ भी सिर्फ़ स्थानों को देखने–भर तक सीमित नहीं रहीं बल्कि मैंने हर उस पत्थर, हर उस दीवार से संवाद करने की कोशिश की जो अपने समय की कोई न कोई दास्तान कहता है.' (मेरी क़लम से) ज़ाहिर है रचनात्मक यात्राएँ तभी संभव हो पाती हैं. अलबत्ता सामान्य रूप से घूमना, देखना तो अपेक्षाकृत आसानी से हो जाता है. वहाँ से लौटने पर साथ में मात्र कुछ दृश्य ले आते हैं जो समय के साथ धुँधले और एक–दूसरे से गड्ड़–मड्ड़ हो जाते हैं. बाद में भुला भी जाते हैं! इन वर्णनों के साथ यह बात नहीं है. संग्रह में जिन स्थानों की यात्रा की गयी है वे हैं – अटारी बॉर्डर, स्वर्ण मंदिर, जलियाँवाला बाग़, साड्डा पिंड, उदयपुर, नाथुला, हिमाचल, झाँसी, पचमढ़ी, चंदेरी, दतिया, ओरछा, जबलपुर, पातालपानी!

इन वर्णनों में, जैसा कि स्वाभाविक भी था, एक ख़ास तरह की आत्मनिष्ठा है. सादगी और सरलता तो है ही ! जैसा कि युवा कथाकार मनीष वैद्य ने भूमिका में कहा है. 'उन्होंने (लेखिका ने) प्रकृति को इन यात्राओं के आलोक में देखा है तथा वहाँ के इतिहास, संस्कृति को खंगाला है.'

पथ के पन्ने : यात्रा वृत्तान्त
लेखिका : डॉ. यशोधरा भटनागर
प्रकाशन : इंडिया नेटबुक प्राइवेट लिमिटेड
मूल्य: 245/-

कविताएं

नव वर्ष पर नए विचार

दिलीप संगम

नव वर्ष पर नए विचार
हम करते रहें सदैव संचार
हर पल खुशियों का अंबार
जनजीवन में नित सदाबहार।

हम परम सौभाग्यशाली हैं
नए साल के अविरल साक्षी हैं
बिना थके अंबर के राही हैं
सूरज की लालिमा के लाल हैं।

भारत की नई उड़ानों की
आर्थिक मोर्चे पर छलांगों की
अपनी वैश्विक पहचानों की
भारत की सामरिक शक्ति की
सरपट दौड़ रहे विकास की।

अपनी समर्पित कार्यशैली की
उत्साहित जन जीवन की
गलियों और चौबारे की
पंछियों के कलरव की
नदियों और झरनों के गीतों की।

भक्तिमय आस्था के सैलाबों की
संपूर्ण सृष्टि में राममय सुर की।
मुरलीधर की बंशी धुन की
पावन धरा और गगन की
नित नए सितारों की चमक की
हर कदम पर कदमताल की
लय और सुर के साथ संगम की।

चलो इस साल कुछ नया करते हैं

सुचिता सकुनिया

चलो, इस साल कुछ नया करते हैं
खुद पर यकीन रखकर
फिर से उड़ान करते हैं।
मन की खुली खिड़कियों में
रोशनी भरने से करते हैं,
जहाँ खुद से मिलना ही सबसे बड़ी मंजिल हो,
उस राह पर बेझिझक कदम बढ़ाने से करते हैं।
कल की परछाइयों को पीछे छोड़कर,
आज की धूप में अपने सपनों को संवारने से करते हैं।

चलो, इस साल कुछ नया करते हैं
साल की शुरुआत
एक अलग अंदाज़ में करते हैं।
जिम्मेदारियाँ तो अब भी निभानी हैं वैसे ही,
पर खुद की जिम्मेदारी का भी खयाल रखने से करते हैं।

चलो, इस साल कुछ नया करते हैं
बीते काश और हाय को पीछे छोड़ने से करते हैं।
नई सुबह को नई उम्मीद की रोशनी से सजाने से करते हैं।

चलो, इस साल कुछ नया करते हैं
अपनों के संग अपने लिए
कुछ अलग करने से करते हैं।
दूसरों के चेहरों पर रोशनी फैलाते हुए
इस बार थोड़ा–सा उजाला खुद में भी भरने से करते हैं।
नए मन, नई उमंग के संग
खुद को खुद से दोबारा मिलने से करते हैं।

इस बार संकल्प इतना–सा –
खुद को खोए बिना,
सबको साथ लेकर चलना है।

कर रहा वक्त सावधान

अजय मिश्रा

हों कहां हिन्दुस्तान,
विशाल देश,सनातन रक्षा,
कहां है सर कहां म्यान,
तीक्ष्ण अस्त्र,हो सख्त विधान,
कर रहा वक्त सावधान,

हों कहां आज हिन्दुस्तान ?
जन मन यह संधान,
सहा बहुत,अब बदलो विधान,
कर रहा वक्त सावधान,

ऐसे सफल प्रयास करो,
जहां कहीं हो देश के दुश्मन,
अब सबका ही नाश करो,

छुपे वतन में जो गद्दार,
दया नही, हो शीघ्र प्रहार,
विद्रोही मन आज सभी का,
साथ सभी हम, सुनो सरकार,

सारी परिभाषाएं बदलो,
सर उठने से पहले ही,
खाक मिला दो सब गद्दार
,

सदी के युवा वर्ष छब्बीस,
निभाओ अब सारे किरदार

गीत

रेखा शाह आरबी

बदहवासी

दिल में बेचैनी बदहवासी है
फिर से आज छायी उदासी है,

हाथों में नहीं लिखा तकदीर है
आंखों में फिर वही तस्वीर है,

जिसे सिर्फ चाहना मुकद्दर है
उसी के लिए दिल दरबदर है

मेरे हाल पर छोड़ मेरी किस्मत
आखिर अपनी भी इज्जत है

हसरतों को चल रख दे पिटारी में
बाकी जिंदगी बीता दुनियादारी में

हिम्मत

गर्दिशों में हवा से चिराग सा लड़ी
फिर भी देखो तनिक नहीं डरी

थर्रा उठा दर्द से भले ही आसमान
मैं अभी तक सही सलामत खड़ी

खुद को मेहनत से तरासते गये
तब अंगुली में नगीने सा जड़ी
देखती सजग नजरों से दुनिया को
अभी तक मैं विचारों से नहीं सड़ी
जीवन लक्ष्य अभी साधना बाकी
तब ही मैं साहसी बहुत बड़ी

मोहब्बत

ना किसी से रंजिश रखी
ना किसी से रुसवाई रखी
सबको सबके मन का दे
खुद के लिए तन्हाई रखी

मछलियां समंदर से जुदा हो
कब भला अय्यारी रखी
तड़प तड़प के मरके भी
उन्होंने तो यारी रखी

मन मान सका ना अब तक
मन ने यह गद्दारी रखी
जिस आग में जलता है
उससे ही प्रीत भारी रखी

दुनिया मतलब तक साथी है
तुमने भी ये समझदारी रखी
खुद के हिस्से सावन रखा
हमारे हिस्से अंधियारी रखी

तुमने खुद को गणित रखा
हम समझने की नादानी रखी
अंक अंक उलझते गए और
तुमने मुस्कान जारी रखी

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी